क्या भ्रष्टाचार अपराध है?

आज भ्रष्टाचार के विरूद्ध सम्पूर्ण भारत में एक उबाल दिख रहा है। बाबा रामदेव सरीखे अनेक लोग तो समाज शास्त्र न समझने के कारण भ्रष्टाचार विरोध को अपनी सर्वोच्च प्राथमिकता मान कर चल ही रहे हैं किन्तु अन्ना हजारे सरीखा समाजशास्त्री भी भ्रष्टाचार विरोध को ही सर्वोच्च प्राथमिकता मानने लगे तो कहीं न कहीं गंभीर भूल तो हो ही रही है। भ्रष्टाचार कभी अपराध नहीं होता। भ्रष्टाचार व्यक्ति का स्वभाव या चरित्र भी नहीं होता। भ्रष्टाचार व्यक्ति की मजबूरी तथा अव्यवस्था का सम्मिश्रण होता है और जब वह अपराध है ही नहीं तब हमारे संघर्ष का सर्वोच्च कन्द्र भ्रष्टाचार कैसे हो सकता है?

अधिकार तीन प्रकार के होते हैं (1) प्राकृतिक या मूल अधिकार (2) संवैधानिक अधिकार (3) सामाजिक अधिकार। प्राकृतिक अधिकारों पर आक्रमण अपराध होता है, संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन गैर कानूनी होता है तथा सामाजिक अधिकारों की अन्देखी अनैतिक होता है। याद रखना आवश्यक है कि आक्रमण सिर्फ प्राकृतिक अधिकारों का ही संभव है। संवैधानिक अधिकारों पर आक्रमण संभव नहीं। उसका तो उल्लंघन ही संभव है। सामाजिक अधिकारों पर तो न आक्रमण संभव है न उल्लंघन। इनकी तो सिर्फ अन्देखी ही होती है।

संविधान हमें मूल अधिकार देता नहीं। संविधान तो हमें मूल अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी मात्र देता है। संविधान तो हमें सिर्फ नागरिक अधिकार ही देता है। स्वाभाविक है कि भ्रष्टाचार सिर्फ वहीं संभव है जहॉ हमारे संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन हो। भ्रष्टाचार की परिभाषा ही यह होती है कि हमें संवैधानिक अधिकार प्रदान करने के लिये नियुक्त अधिकारी यदि अपने दायित्व पूरे करने में गड़बड़ करें तभी वह भ्रष्टाचार होगा अन्यथा नहीं। यदि कोई व्यक्ति अधिकार प्राप्त नहीं है तथा वह कोई बाधा पहुंचाता है तो वह भ्रष्टाचार न होकर अपराध हो जायेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी अधिकार प्राप्त व्यक्ति द्वारा ही भ्रष्टाचार करना संभव है, अन्यथा नहीं।

जब भारत स्वतंत्र हुआ तब राजनीति में भ्रष्टाचार भी कम था और राजनीति में भ्रष्ट व्यक्ति भी बहुत कम थे। समाज में भी भ्रष्टाचार न के बराबर था। प्रश्न उठता है कि भ्रष्टाचार बढ़ा क्यों? यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि भ्रष्टाचार कम क्यों नहीं हो रहा? क्या प्रयत्न कम हुए? या भ्रष्टाचार दूर करने वालों की नीयत ही ठीक नहीं थी? मेरे विचार में न प्रयत्न कम हुए न प्रारंभ में नीयत खराब थी। वास्तव में व्यवस्था करने वालों की नीतियां गलत थीं। उन्होंने भ्रष्टाचार और अपराध को एक कर दिया। उन्होंने भ्रष्टाचार की उत्पत्ति को रोकने की कोई कोशिश कभी नहीं की। परिणाम स्वरूप ये जितना भ्रष्टाचार रोक पाते थे उससे कई गुना ज्यादा भ्रष्टाचार पैदा हो जाता था। एक टंकी में चार इंच के पाइप से पानी भरा जाये और दो इंच निकाला जाये तो टंकी का जल स्तर कभी कम नहीं हो सकता जब तक उसमें गिरने वाले पानी की मात्रा निकलने वाले पानी से कम न हो। अन्ना जी की टीम जिस भ्रष्टाचार की रोक थाम के लिये दो इंच के पाइप को बढ़ाकर साढ़े तीन करने की बात कर रहे हैं वह समस्या का समाधान नहों है क्योंकि टंकी में पानी लगातार चार इंच के हिसाब से गिर रहा है। भ्रष्टाचार यदि कम होता है तो शासन पक्ष की समस्याऍं घटेंगो परन्तु उससे समाज को कोई विशेष लाभ नहीं होगा।

पहले तो यह तय करना है कि भ्रष्टाचार राजनैतिक समस्या है या सामाजिक। मेर विचार से राजनेताओं ने बहुत चालाकी से इसे सामाजिक समस्या बना दिया है जबकि यह समस्या कहीं से भी सामाजिक समस्या नहीं। सरकारी कर्मचारी को जनता कभी नियुक्त नहीं करती। जनता तो केवल विधायिका का ही चुनाव करती है और विधायिका द्वारा किसी प्रक्रिया के अन्तर्गत कर्मचारी नियुक्त होते हैं। कल्पना करिये कि एक मालिक का मुनीम हमें अनाज कम तौल कर देता है तो क्या हम उस मुनीम से विवाद कर सकते हैं जिसकी न हमने नियुक्ति की है न उस पर हमारा अनुशासन है। हमने एक करोड़ रूपया क को सुरक्षित रखने को दिया। क ने वह रूपया ख को दिया। क्या हम ख से कोई विवाद कर सकते हैं? हमारे राजनीतिज्ञ चाहते हैं कि समाज सरकारी कर्मचारियों के भ्रष्टाचार से निपटे। ज्यादा दुखद तो यह है कि क ने बीच में भ्रष्टाचार करके वह रूपया ख को दिया है। ऐसी स्थिति में ख से विवाद करना हमारी भूल है और क की चालाकी। अन्ना जी या रामदेव जी ख से विवाद में उलझे हैं जबकि इस भ्रष्टाचार में हम कोई पक्ष नहीं है।

एक झूठ और समाज में फैलाया गया है कि घूस देने वाला भी भ्रष्टाचार का दोषी है। वेद प्रताप वैदिक जी बहुत जोर शोर से यह बात कहते हैं। अन्ना जी भी यदा कदा यह कह देते हैं। मेरे विचार में भ्रष्टाचार वही होता है जिसमें एक पक्ष किसी कानूनी शक्ति प्राप्त व्यक्ति का हो। घूस लेने वाला अधिकार सम्पन्न है। यदि वह अधिकार सम्पन्न नहीं होता तो उक्त लेनदेन भ्रष्टाचार न होकर चाहे ठगी होता या कोई अन्य किन्त् भ्रष्टाचार नहीं होता। घूस देने वाले के पास कोई विशेष शक्ति नहीं है इसलिये घूस देने वाला अनैतिक तक ही हो सकता है किन्तु भ्रष्टाचार नहीं। पचास वर्ष पूर्व वर्षों विचार मंथन के बाद रामानुजगंज शहर में प्रस्ताव पारित हुआ था कि राजनेताओं का भ्रष्टाचार तीन नम्बर अर्थात् अपराध माना जायेगा और शासकीय कर्मचारियों का दो नम्बर अर्थात् गैर कानूनी। सम्पूर्ण देश में यह प्रस्ताव विवाद का विषय बना। आज भी विवादास्पद ही है किन्तु मैं आश्वस्त हूॅ कि हमारा पक्ष तर्क संगत है। अन्ना जी लोकपाल के नाम पर जो परिश्रम कर रहे हैं उसका कोई गंभीर परिवर्तन कारी परिणाम न आया है न आयेगा क्योंकि भ्रष्टाचार गलत नीतियों का परिणाम है, कारण नहीं। जब तक नीतियॉ ठीक नहीं होतीं तब तक परिणाम में कोई उल्लेखनीय बदलाव संभव नहीं। साथ ही जब तक नीयत ठीक नहीं होगी तब तक नीतियां ठीक नहीं होंगी। नीयत राजनेताओं की ठीक होगी नहीं। अतः एक ही मार्ग बचता है कि उनके अधिकार कम हों उनका समाज में हस्तक्षेप कम हो।

पूरा देश जानता है कि भारत की सरकारी मशीनरी आकंठ भ्रष्टाचार में डूबी हुई है। हमारी राजनैतिक व्यवस्था उसी भ्रष्ट व्यवस्था को नये नये अधिकार देकर उन्हें भ्रष्टाचार के अवसर प्रदान करती है। संसद प्रतिवर्ष दस बीस ऐसे कानून बनाती ही है जो वर्तमान सरकारी मशीनरी को और ज्यादा पावर फूल बनाती है। जब पूरी पुलिस भ्रष्ट है तो फिर उसी पुलिस को बाल विवाह या बाल यौन शोषण रोकने का अधिकार देने को जल्दी क्यों? क्या इस तरह वर्तमान भ्रष्ट व्यवस्था को और भ्रष्ट होने का अवसर नहीं मिलेगा? पहले यह तय करिये कि पहले भ्रष्टाचार पर नियंत्रण जरूरी है या बाल विवाह पर। यदि आप सिगरेट रोकने का कानून बनाना ज्यादा जरूरी मानते हैं तो स्पष्ट है कि भ्रष्टाचार नियंत्रण आपका नाटक है और ऐसे नाटक में आप समाज को उलझा कर रखना चाहते हैं। मैंने तो कभी भ्रष्टाचार रोकने की पहल नहीं की क्योंकि भ्रष्टाचार नियंत्रण वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था का नाटक ही है तो भले ही रामदेव जी आदि हजारों लोग उसमें लगें लेकिन मैं उस नाटक के आनंद से दूर रहूॅ तो ठीक। अन्ना जी को भी समझना चाहिये कि लोकपाल का आंदोलन वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था में सुधार तक ही सीमित है, व्यवस्था परिवर्तन की दिशा इसमें कहीं नहों है। आप यदि लोकपाल में ही उलझे रहे तो व्यवस्था परिवर्तन की लड़ाई कौन लड़ेगा? भ्रष्टाचार के विरूद्ध लड़ने वाले देश में हजारों हैं किन्तु व्यवस्था

परिवर्तन को समझने योग्य तो देश में गिने चुने ही लोग हैं और ऐसे लोगों में भी आगे आने वाले तो आप ही दिखते हैं। भष्टाचार का घटना बढ़ना एक निरंतर चलने वाली प्रकिया है और समाज को राजनेताओं की गुलामी से मुक्त कराना बिल्कुल अलग प्रकिया है। छोड़िये बार बार यह कहना कि नेता भ्रष्ट हैं। भारत का हर बच्चा बच्चा जानता है कि राजनीति भ्रष्टाचार की पहचान बन गई है। आप कहें तब भी और न कहें तब भी। आप तो यह सच बात उठाइये कि राजनेताओं की नीयत खराब है। इन लोगों ने भारतीय संविधान को बंधक बना लिया है। ये लोग संविधान के साथ मनमाना खिलवाड़ कर रहे हैं। अब हम अपने संविधान को इनके चंगुल से मुक्त करावें। संविधान मुक्ति हमारे जीवन मरण का प्रश्न है। संविधान हमारी सम्पति है और हम उसके लिये अन्तिम दम तक लड़ेंगे।

मुझे पचास वर्ष हो गये यह समझाते कि सरकारी कर्मचारियों का भ्रष्टाचार कानूनी अपराध है और राजनेताओं का भ्रष्टाचार सामाजिक अपराध है। वास्तव में तो प्रधानमंत्री भी हमारा प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व नहीं करते। हमारा प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व तो संसद ही करती है। यदि उसमें भ्रष्टाचार है या भ्रष्टाचारियों से साठ गांठ है तो भ्रष्टाचार से लड़ाई की शुरूआत सिर्फ संसद तक सीमित होनी चाहिये क्योंकि वे हमारे द्वारा नियक्त हैं। ये लोग चालाकी से इस लड़ाई को कभी सरकार की तरफ धकेल देते हैं तो कभी सरकारी कर्मचारियों की तरफ। हम भी इनके बहकावे में आकर अपनी ताकत उधर लगाना शुरू कर देते हैं। ऐसा बिल्कुल ठीक नहीं। भ्रष्टाचार के विरूद्ध काम करते रहिये किन्तु ध्यान रहे कि भ्रष्टाचार नियंत्रण हमारा लक्ष्य नहीं। हमारा लक्ष्य है राजनैतिक व्यवस्था परिवर्तन और हम लगातार उस दिशा में बढ़ने का प्रयास करे।

महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि हर आदमी की क्षमता एक समान तो है नहीं जो सब लोग व्यवस्था परिवर्तन की दिशा में लग जायें। ऐसी हालत में किसकी क्या भूमिका हो यह विचारणीय है। मेरे विचार में वर्तमान समय में कुल ग्यारह ही समस्याएँ महत्वपूर्ण हैं। (1) चोरी, डकैती, लूट (2) बलात्कार (3) मिलावट कमतौल (4) जालसाजी धोखाधड़ी (5) हिंसा, आतंक, बल प्रयोग (6) भ्रष्टाचार (7) चरित्रपतन (8) साम्प्रदायिकता (9) जातीय कटुता (10) आर्थिक असमानता (11) श्रम शोषण। इन समस्याओं में से प्रथम पांच भारतीय संवैधानिक व्यवस्था की कम सकियता के कारण बढ़ी हैं तो अन्तिम 6 भारतीय संवैधानिक व्यवस्था की अति सकियता के कारण।

इसके समाधान का प्रथम चरण यह ही हो सकता है कि समाज प्रथम पांच के लिये राज्य को अधिकाधिक सकिय होने का दबाव डाले तथा अन्तिम 6 पर राज्य को दूर होने हेतु प्रेरित करे। राज्य अन्तिम 6 की दिशा में अधिक सकियता बढ़ाना चाहता है। इसके लिये यह सामाजिक संस्थाओं, कलाकारों, साहित्यकारों को आर्थिक सहायता दे देकर ऐसे मुद्दे प्राथमिक स्तर पर चर्चा में बनाये रखना चाहता है। आमिर खान के सत्यमेव जयते के किसी संदेश में प्राथमिक पांच का कोई जिक्र नहीं। यह तो बाद की 6 से भी बाहर के विषय बहस में ला रही है जो प्राथमिकता क्रम में ग्यारह से भी बाहर है। अन्ना जी जो भ्रष्टाचार का मुद्दा सर्वोच्च प्राथमिक बना रहे हैं वह भी अन्तिम 6 में शामिल है जो राज्य की अति सकियता का परिणाम है। हम सबका कर्तव्य है कि हम अपना लक्ष्य निर्धारित करें और उसके लिये राज्य और समाज की भूमिकाएँ स्पष्ट करें तभी समाधान का मार्ग निकल सकेगा।

टीम अन्ना का नया आंदोलन

टीम अन्ना ने भ्रष्टाचार के विरूद्ध लडाई के दूसरे चरण की घोषणा करके बहुत हिम्मत का काम किया है। लोकपाल की लडाई का स्वरूप परिवर्तन होना ही चाहिये था। पंद्रह मे से कितने मंत्री भ्रष्ट है और कितने ठीक यह तो जांच के बाद ही पता चलेगा किन्तु इतने स्पष्ट आरोपो के बाद जांच तो होनी ही चाहिये। इस संघर्ष मे हम टीम अन्ना का सहयोग करेंगे। यद्यपि मुझे विश्वास ह कि प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह इस जांच से बेदाग निकलेंगे।

टीम अन्ना ने अपने आंदोलन के साथ पेट्रोल की मूल्य वृद्धि तथा लगातार बढती मंहगाई की भी चर्चा कीं। इसके पूर्व अन्ना जी ने भी इस विषय पर आंदोलन की बात कही है। मेरे विचार मे पेट्रोल की मूल्य वृद्धि और महगाई का प्रचार सम्पन्न, बुद्धिजीवी, शहरी, तथा उपभोक्ता वर्ग द्वारा गरीब, ग्रामीण, श्रमजीवी तथा उत्पादक समूह के विरूद्ध साठ पंसठ वर्षो से जारी षडयंत्र कारी अर्थनीति का ही हिस्सा है जिस असत्य प्रचार के शिकार अन्ना जी या उनकी टीम के लोग हुए हैं।

भारत की राजनैतिक व्यवस्था मे सन इक्यान्नवे तक का अधिकांश कार्यकाल नेहरू परिवार के नेतृत्व मे रहा। इस परिवार ने प्रारंभ से ही ऐसी अर्थ नीति का विकास किया जो गरीब ग्रामीण श्रमजीवी उत्पादको के विरूद्ध अमीर शहरी बुद्धिजीवी उपभोक्तावाद को प्रश्रय देती रही। पंडित नेहरू एक बहुत ही चालाक राजनेता माने जाते रहे हैं। उनके पूंजीवादी चेहरे ने समाजवादी मुखौटा लगाकर अर्थव्यवस्था को अधिकतम राज्य केन्द्रित करने का प्रयास किया। उन्होने हमेशा ही कृत्रिम उर्जा के मूल्य श्रम मूल्य से नीचे ही रखने की कोशिश की। वे जानते थे कि यदि कृत्रिम उर्जा के मूल्य श्रम की तुलना मे उपर हो गये तो श्रम खरीदने वाला वर्ग तबाह हो जायगा। नेहरू जी जानते थे कि पश्चिम के अनेक देश श्रम अभाव देश है। वहॉ श्रम और बुद्धि के मूल्यो के बीच बहुत ज्यादा अंतर नही। वहॉ के लोगो को पेट भरने के लिये श्रम न करके सुविधा के लिये श्रम करना है। इसलिये वहा कृत्रिम उर्जा को बहुत सस्ता रखना आवश्यक है। दूसरी ओर भारत एक श्रम बहुल देश है। यहॉ यदि कृत्रिम उर्जा मंहगी नही होगी तो श्रम और बुद्धि के बीच का अंतर बहुत बढ जायगा। सब कुछ जानते हुए भी उन्होने न जाने क्या सोचकर कृत्रिम उर्जा को श्रम मूल्य से नीचे रखन का आत्मघाती मार्ग चुना। परिणाम जो होना था वही हुआ। श्रम, बुद्धि और धन के बीच लगातार दूरी बढती चली गई। आवागमन सस्ता हुआ। लघु उधोगों का स्थान बडे–बडे दैत्याकार उद्योगों ने ले लिया। गांवो से शहरो की ओर पलायन बढा। विकास दर उल्टी हो गई। उसे नीचे के वग के लिये अधिक तथा उपर वालों के लिये कम होना चाहिये था। किन्तु इसके ठीक उलट गरीब ग्रामीण श्रमजीवी किसान की विकास दर एक से पांच प्रतिशत के बीच तक रही तो मध्यम श्रेणी बुद्धिजीवी की विकास दर पांच से दस के बीच तथा उच्च श्रेणी पूंजीपति वर्ग की विकास दर दस से पंद्रह के बीच। इस सारे षडयंत्र के लिये सिर्फ एक ही काम किया गया कि कृत्रिम उर्जा के मूल्यो को श्रम मूल्य की तुलना मे कम से कम रखा जावे। श्रम बहुल भारत के गांव तक के कार्यो मे मशीनों का लगातार विस्तार इसी का परिणाम तो है। भारत मे कृषि उत्पादन तेजी से बढा है और गरीब किसान आत्महत्या कर रहा है यह सोचनीय है। भारत जैसे देश मे जहॉ वार्षिक विकास दर दुनिया मे उल्लेखनीय है वहॉ के श्रमजीवियों को नरेगा और गरीबो को सस्ता चावल दे देकर मरने से बचाया जा रहा हैं। विचारणीय है कि हमारे भारत का बुद्धिजीवी यदि सारी दुनियां मे बौद्धिक प्रतिस्पर्धा करने मे सफल है या भारत के पूंजीपति अमेरिका और ब्रिटेन के पूंजीपतियों से भी आगे निकलने की दौड मे शामिल है, उस देश के श्रमजीवी की यह दुर्दशा कि अमेरिका मे श्रमजीवी का एक दिन का जितना श्रम मूल्य है उतना भारतीय श्रमिक को एक माह मे भी नही मिलता। भारत मे नरेगा का अधिकतम श्रम मुल्य चार हजार रूपया मासिक है तो अमेरिका मे एक दिन का श्रम मूल्य इससे भी कही ज्यादा ही होगा।

नेहरू जी ने एक घपला और किया कि उन्होने गरीब ग्रामीण श्रम उत्पादन उपभोक्ता वस्तुओ पर भारी अप्रत्यक्ष कर लगा दिये। जिससे कुछ प्रत्यक्ष सवसीडी देकर मियां की जूती मिंया का सर की कहावत भी चरितार्थ हो जाय और गरीब किसान अपने आंसू पुंछते देखकर ऐसे नेताओ के प्रति कृतज्ञता भी प्रकट करता रहे। अन्ना जी और उनकी टीम को जिस पेट्रोल की मूल्य वृद्धि की आज इतनी गंभीर याद आई है उस टीम को क्या यह नहीं पता कि सम्पूर्ण भारत मे साइकिल पर चार साढे चार सौ रूपये कर लगाकर रसोई गैस पर सब्सीडी दी जाती है, जहां बैलों की खाने वाली खली पर टैक्स लगाकर ट्रेक्टर को छूट मिलती है। क्या अन्ना जी नही जानते कि भारत मे वायु प्रदुषण करता है स्कूटर और कार वाला तो सफाइ कर देता है पेड वाला। उन्हे यह भी जानना चाहिये कि हमारे छत्तीसगढ के गन्ना उत्पादक अपने खेत का गुड नही बना सकते। इतना ही नही किसी षडयंत्र के अर्न्तगर्त हमारे पिछडे जिले सरगुजा या बस्तर का कोई व्यक्ति अपने ही जिले मे जमीन खरीदकर न घर बना सकता है न खेती के अलावा कोई छोटा भी उद्योग लगा सकता है। बडे–बडे शहरों मे या विकसित क्षेत्रों मे बेरोक टोक उद्योग लगाये जा सकते है किन्तु पांचवी अनुसूची के क्षेत्र भी यदि विकसित हो गये तो हम अजायब घर दिखाने से वंचित रह जायेंगे।

अरविन्द जी, अन्ना जी ने मंहगाई के बढने की भी चर्चा की है। सच तो यह है कि बढती आर्थिक विषमता या श्रम शोषण पर से आम आदमी का ध्यान हटाने के लिये एक मंहगाई का झूठ बार बार बोला जा रहा है। दो वर्ग है (1) क्रेता (2) विक्रेता । हम अपनी कोई चीज किसी दूसर को देते है और हमे पहले की अपेक्षा कम वस्तु मिले तब हम उस वस्तु को मंहगा कह सकते है। साठ पैंसठ वर्षो मे सोना, चांदी जमीन को छोडकर कुछ भी मंहगा नही हुआ है। यदि साठ वर्ष पूर्व रूपया चांदी का था तो आज के रूपये के आधार पर उस तरह सामान मिलने की चर्चा करना मूर्खता ह। महगांई नाम की कोई चीज नहीं है किन्तु स्वार्थवश मंहगाई को भूत के रूप मे खडा किया गया है। सन साठ मे भी हर राजनेता या मध्यम वर्ग के लोग इसी तरह मंहगाई–मंहगाई चिल्लाते थे और आज भी। न उस समय मंहगाई थी न आज है।

एक चौथा षडयंत्र यह भी है कि उसी समय से नेताओं ने दोहरी चाल चली। एक तरफ तो वे कृत्रिम उर्जा सस्ती करके गरीब ग्रामीण श्रमजीवी किसान के उत्पादन उपभोग की वस्तुओ पर भारी कर लगाकर तथा मंहगाइ–मंहगाई का भ्रम फैलाकर इनके शोषण की पृष्ठभुमि तैयार करते रहे हैं तो दूसरी ओर गरीब ग्रामीण श्रमजीवी किसान को अमीर शहरी बुद्धिजीवी उपभोक्ता के विरूद्ध संघर्ष के लिये भी लगातार प्रोत्साहित भी करते रहे हैं। इस वर्ग के बिचौलिये लगातार घूम–घूम कर गरीब ग्रामीण श्रमजीवी उत्पादक के हितैषी बनकर उनके वकील बने रहते हैं। उचित तो यही था कि वैचारिक बहस खडी करके ऐसे षडयंत्र को उजागर किया जाय किन्तु दुख होता है कि ऐसा करने की क्षमता रखने वाले लोग ही इस असत्य प्रचार के शिकार हो गये हैं।

अभी–अभी मै ए टू जेड न्यूज चैनल मे पेट्रोल की मूल्य वृद्धि पर चर्चा के लिये था। उपस्थित सौ लोगों मे मै अकेला था जो इस मूल्य वृद्धि को निरर्थक कह रहा था। मेरा विचार था कि भारत की सभी आर्थिक समस्याओ का एक ही समाधान है कि डीजल, पेट्रोल, गैस, बिजली, मटटी तेल तथा कोयले के दाम कम से कम दो गुना करके ग्रामीण गरीब श्रमजीवी किसान के उत्पादन उपभोग की वस्तुए कर मुक्त कर दें, सब प्रकार के निजी वनोपज भी कर मुक्त कर दें तथा प्रत्येक व्यक्ति को शेष बची रकम प्रति व्यक्ति प्रति माह दो हजार रूपया उर्जा सब्सीडी के रूप मे दे दें। वहॉ एक भी व्यक्ति ऐसा नही मिला जो मेरी बात से सहमत हों। अनेक लोगो ने तो यहां तक कहा कि आज हमे खोजने से भी मजदूर नही मिलता। इस तरह तो मजदूर कभो मिलेगा ही नहीं। कुछ लोगो ने दलील दी कि गरीब तो अपने भाग्य की सीमाए समझकर संतुष्ट है और अमीर को कोई फर्क नही पडेंगा। वास्तव मे तो हम बीच वाले परेशान होंगे। मै देख रहा था कि वहॉ बैठा एक भी व्यक्ति ऐसा नही था जो श्रम खरीदने वाला न हो। वे स्वयं तो पंद्रह–बीस हजार रूपया का काम करना चाहते है और अपने घरेलू काम के लिये चार पांच हजार का मजदूर चाहते है। स्वाभाविक है कि कृत्रिम उर्जा मूल्य वृद्धि ऐसे मध्यम वर्ग पर भी बुरा प्रभाव डालेगी जो पांच लोगों के परिवार मे पांच हजार रूपया मासिक से भी अधिक की उर्जा उपभोग करते हैं। विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या ऐसे उच्च मध्यम वर्ग के हितो के लिये निम्न वर्ग की बलि चढा दी जावे। वर्तमान सरकार कृत्रिम उर्जा की मूल्य वद्धि न कर रही है न करना चाहती है। वह भी चाहती है कि गरीब ग्रामीण श्रमजीवी किसान की कीमत पर उसका उच्च मध्यम बुद्धिजीवी वग खुश रहे। इस वर्ग की शिक्षा चिकित्सा आदि पर भारी खर्च की भरपाई के लिये मामूली सी पेट्रोल–डीजल की मूल्य वृद्धि पर भी इतनी हाय तौबा मचती है जैसे कोई बडा खतरनाक तूफान आने वाला हो। मुरार जी के कार्यकाल तथा विश्वनाथ प्रताप सिह जी के या अटल जी के गैर नेहरू परिवार शासन काल मे भारी डीजल, पेट्रोल, बिजली की मूल्य वृद्धि हुई थी। तब नेहरू परिवार के नेतृत्व मे ही तो ऐसी मूल्य वृद्धि और मंहगाई के विरूद्ध आंदोलन करके सत्ता परिवर्तन हुआ। यदि अब विपक्ष के भाग्य से वही समय आया है तो हम उस विपक्ष को क्यों कोसें? किन्त हमे तो अपनी बात रखने मे सत्य असत्य का भी ख्याल रखना होगा और जनहित का भी। इसके पूर्व भी टीम अन्ना सोने पर लगने वाले टैक्स का विरोध करके संदेह के घेरे मे आ चुकी है। अब प्रेट्रोल की मूल्य वृद्धि के विरोध ने तो स्थिति को और खराब कर दिया है । आवश्यक नही कि हर मुद्दे पर अपनी राय व्यक्त ही की जावे। जो विषय ऐसे है उन पर बहुत सोचकर ही बोला जावे और यदि कोइ विषय गरीब ग्रामीण किसान से जुडा हो तो और भी ज्यादा सतर्कता आवश्यक है।

हम जे पी आंदोलन के साथ लगातार जुडे रहे। वह आंदोलन भी धीरे धीरे सत्ता परिवर्तन तक सिमट गया। यह नया आंदोलन भ्रष्टाचार संघर्ष से शुरू होकर व्यवस्था परिवर्तन की दिशा मे बढना चाहिये। किन्तु सस्ती लोकप्रियता के चक्कर मे कहीं यह आंदोलन भी मंहगाई और डीजल–पेट्रोल जैसे अनावश्यक मुद्दो की भेंट न चढ जावे। यही सोचकर मैने एक सहायक के नाते सतर्क करना ठीक समझा । यदि कृत्रिम उर्जा या मंहगाई के विषय मे कोई अपने वक्तब्य को ठीक मानता हो तो मै उन सबके बीच भी खुली चर्चा हेतु तैयार हूँ। मै यह स्पष्ट कर दूं कि मै टीम अन्ना से ऐसी अपेक्षा नही करता कि वे अपना महत्व पूर्ण कार्य छोडकर इन कार्यो मे लगे किन्तु मै इतना अवश्य चाहता हूँ कि वे अपनी सोच को बिल्कुल साफ रखे कि कृत्रिम उर्जा का मंहगा होना भारत की सभी आर्थिक समस्याओ का एकमात्र समाधान है।

मैं आंदोलन अन्ना का सहयोगी हूँ, सहभागी नहीं। क्यों?

पिछले दिनों मैंने कुछ लेख लिखे जो विराधाभासी दिखते हैं। मैंने लिखा

(1) वर्तमान समय में राजनीति में लगभग सारे लोग भ्रष्ट हैं। मनमोहन सिंह सहित।

(2) स्वतंत्रता के बाद पहली बार भारत में मनमोहन सिंह के रूप में एक अच्छा प्रधानमंत्री आया है। हम नासमझी में या स्वार्थ वश उसे अस्थिर कर रहे हैं।

(3) हम रामदेव जी के आंदोलन का समर्थन करते हैं, सहयोग नहीं।

(4) हम अन्ना जी की टीम का सहयोग करते हैं, सहभागिता नहीं।

(5) हमारे विचार में भ्रष्टाचार के विरूद्ध आंदोलन समस्या का समाधान नहीं।

इन सब लेखों ने पाठकों को असमंजस में डाल दिया है कि हम कहना क्या चाहते हैं?

सन् सैंतालीस से ही भारत संसदीय लोकतंत्र की लाइन पर चला जिसका अर्थ है संसद सर्वोच्च। इस संसदीय लोकतंत्र में राजनैतिक व्यवस्था के पास अधिकतम अधिकार अधिकतम दायित्व होते हैं। इसके पास संविधान संशोधन तक के अधिकार होते हैं। यह व्यवस्था समाज से भी उपर हो जाती है तथा समाज से लेकर व्यक्ति तक के हित के सारे अधिकार अपने पास समेट लेती है चाहे व्यक्ति चाहे या न चाहे। चाहे समाज की सहमति हो या न हो।

संसदीय लोकतंत्र तानाशाही से बचाता है किन्तु अव्यवस्था की दिशा में ले जाता है। संसदीय लोकतंत्र में अव्यवस्था तथा भ्रष्टाचार निश्चित है। मैं अक्षरशः सहमत हूँ कि Power Corrupts a man and absolute power absolutely corrupts जिस बात को मेरे जैसा साधारण व्यक्ति भी समझता है वह बात टीम अन्ना के पढ़े लिखे लोग नहीं समझते। ये पावर घटाने की अपेक्षा भ्रष्टाचार दूर करने पर ज्यादा जोर देते हैं जो असंभव कार्य है। यदि आप अव्यवस्था भ्रष्टाचार से मुक्त होना चाहते हैं तो संसदीय लोकतंत्र को बदलना ही होगा। इस बदलाव के दो ही मार्ग है (1) तानाशाही (2) सहभागी लोकतंत्र या लोकस्वराज्य। तीसरा कोई मार्ग नहीं। तानाशाही के मार्ग से अव्यवस्था भ्रष्टाचार से मुक्ति मिलेगी, तीव्र विकास होगा किन्तु गुलामी आयेगी। दूसरी ओर लोक स्वराज्य प्रणाली आने ही नहीं दी जायेगी क्योंकि सम्पूर्ण राजनैतिक व्यवस्था ने उसकी चचा तक को रोक रखा है। ऐसी स्थिति में मैंने विश्लेषण किया है कि समस्याओं का समाधान तो सिर्फ व्यवस्था परिवर्तन अर्थात् लोक स्वराज्य प्रणाली की दिशा मात्र ही है। बाकी सारी चर्चाऐं या आंदोलन तो वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था में सुधार तक सीमित है, समाधान नहीं। भ्रष्टाचार के विरूद्ध आंदोलन भी ऐसे ही सुधार का एक भाग है।

मैं रामदेव जी का समर्थक हूँ। ये वर्तमान स्वार्थ पूर्ण राजनेताओं को हटाकर अच्छे लोगों को सत्ता में लाना चाहते हैं। रामदेव जो अच्छा काम कर रहे हैं किन्तु रामदेव जी को लोक स्वराज्य प्रणाली का न ज्ञान है न विश्वास। सत्ता में अच्छे लोगों का जाना कोई समाधान नहीं है क्योंकि पचास वर्ष पूर्व सत्ता में बहुत अच्छे लोग थे तब भी सत्ता बिगड़ती गई क्योंकि वह संसदीय लोकतंत्र प्रणाली का दोष था जो अच्छे लागों को कमजोर करके बुरे लोगों को आकर्षित करने में सफल रही। दूसरा आंदोलन अन्ना जी तथा उनकी टीम का है। अन्ना जी लोक स्वराज्य को समझते भी हैं और उस दिशा में साफ साफ बढ़ना चाहते हैं। अन्ना जी की टीम के प्रमुख लोग अरविन्द केजरीवाल, प्रशान्तभूषण आदि लोक स्वराज्य को समझत हैं और उसे समाधान भी मानते हैं किन्तु उन्हें जनता पर इतना विश्वास नहीं कि जनता इसे हाथो हाथ उठा लेगी। यही कारण है कि वे घूम फिर कर भ्रष्टाचार विरोध पर आ जाते हैं। भ्रष्टाचार विरोध एक लोक प्रिय मुद्दा है, सत्ता परिवर्तन का आधार हो सकता है किन्तु व्यवस्था परिवर्तन का आधार नहीं। मेरा मत है कि व्यवस्था परिवर्तन का आधार तो लोक संसद का आंदोलन ही है। जिससे टीम अन्ना को विश्वास होते हुए भी डर लगता है।

वर्तमान राजनैतिक वातावरण की समीक्षा करें तो मेरे विचार में बड़ी कुशलता से मनमोहन सिंह अघोषित रूप से ठीक दिशा में जा रहे हैं। सन् सैंतालीस से अब तक देश केन्द्रीयकरण की लाइन पर था। मजबूत प्रधानमंत्री थे जो हर छोटी से छोटी बात के लिये जिम्मेदार थे। किसी रेल दुर्घटना के लिये अपनी गलती न होते हुए भी रेलमंत्री का त्यागपत्र सिद्ध करता है कि सम्पूर्ण राजनैतिक व्यवस्था केन्द्रित थी। यह शास्त्री जो के त्याग का उदाहरण तो बना किन्तु व्यवस्था नहीं बनी। मनमोहन सिंह ने विकेन्द्रित शासन प्रणाली की शुरूआत की है। मनमोहन सिंह चाहते हैं कि व्यवस्था शक्तिशाली हो व्यक्ति या पद नहीं। यदि किसी व्यक्ति के साथ अन्याय होता है और आप इतने सक्षम हैं कि उसका अन्याय दूर कर सकते हैं। जनता आपसे चाहती है कि आप उसका अन्याय दूर करें। मेरे विचार में यह लोक लुभावन मार्ग है। अच्छा तो यही है कि आप उस अन्याय को दूर करने योग्य व्यवस्था तैयार करें न कि स्वयं उसे ठीक करने में लग जायें। आज भारत में हर व्यक्ति स्वयं न्याय देना चाहता है। मनमोहन सिंह चाहते हैं कि स्वयं समस्याओं का समाधान करने की प्रवृत्ति लोकतंत्र नहीं है। लोकतंत्र तो किसी व्यवस्था के अन्तर्गत समाधान होना है। ये पूरी तरह निजीकरण के पक्षधर हैं। मनमोहन सिंह जी ने न किसी व्यक्ति को भ्रष्टाचार करने से रोका न ही किसी को भ्रष्टाचार पकड़ने से। आज तक जितने भी पधानमंत्री हुए उन्होने स्वयं को शासक समझा। उन्होंने जहॉ चाहा वहॉ भ्रष्टाचार करने वालों को रोका और जहॉ चाहा वहॉ भ्रष्टाचार रोकने वालों को भी रोककर भ्रष्टाचार पर पर्दा डाला क्योंकि ये व्यवस्था को स्वयं से उपर नहीं मानते थे। मनमोहन सिंह व्यवस्था को स्वयं से उपर मानते हैं।

मनमोहन सिंह जी दुहरी समस्या से जूझ रहे हैं। गुलाम मानसिकता के लोग इन्हें मजबूत प्रधानमंत्री के रूप में देखना चाहते हैं तथा सत्ता लोलुप लोग इन्हें कमजोर या भ्रष्ट कहकर स्वयं इनकी जगह आना चाहते हैं। सोनिया जी इन्हें असफल सिद्ध करके राहुल की ताजपोशी चाहती हैं किन्तु उन्हें डर है कि कहीं इनकी बिदाई कांग्रेस पार्टी की ही बिदाई न बन जाये। भारत की जनता के समक्ष दो मार्ग हैं (1) नरेन्द्रमोदो सरीखे कार्यकुशल तानाशाह प्रशासक के माध्यम से भ्रष्टाचार मुक्ति और विकास का मार्ग पकड़े अथवा (2) नीतिश कुमार मनमोहन सिंह सरीखे लोकतांत्रिक मार्ग को आगे बढ़ायें। भारत की जनता अव्यवस्था से उब चुकी है। वह नरेन्द्र मोदी के मार्ग पर जाना चाहती है जो उसकी मजबूरी है किन्त मार्ग खतरनाक है। कांग्रेस पार्टी के नाम पर सोनिया राहुल सशक्तिकरण तो और भी खतरनाक है। ऐसी स्थिति में नीतिश या मनमोहन सिंह ही विकल्प दिखते हैं।

रामदेव जी को भारत की जनता पर पूर्ण विश्वास है कि वह भावनाप्रधान होने से आसानी से ठगी जा सकती है। टीम अन्ना को भारत की जनता पर विश्वास ही नहीं है कि वह सहभागी लोकतंत्र या लोक स्वराज्य की अवधारणा को समझ पायेगी। इसलिये ये भ्रष्टाचार को प्रमुख मुद्दा बनाना चाहते हैं। भारत की जनता को विश्वास नहीं है कि भ्रष्टाचार के नाम पर सत्ता में आने वाले सहभागी लोकतंत्र की लाइन पर जायेंग। चाहे और किसी को भले ही हो किन्तु मुझे तो नहीं है क्योंकि दो माह पूर्ण जिस तरह टीम अन्ना ने ललकारा था कि संसद अपराधियों का चारागाह होने से वह

स्वयं में एक समस्या है, अब लाइन बदलकर प्रधानमंत्री सहित पंद्रह मंत्रियों की जांच के मुद्दे को टकराव का मुद्दा बनाने की घोषणा कर रही है। जब टीम अन्ना भी जानती है और पूरा देश भी जानता है कि संसद में इमान की कसौटी पर शायद ही कोई खरा उतर पाये तो ऐसा मुद्दा उठाना कितना उपयोगी है। भ्रष्टाचार करना और भ्रष्टाचार होते हुए देखने मे बहुत फर्क है। मनमोहन सिंह ने भ्रष्टाचार किया नहीं। मनमोहन सिंह ने सक्षम होते हुए भी भ्रष्टाचार रोका नहीं यह उन पर आरोप है। मनमोहन सिंह ने भ्रष्टाचार के विरूद्ध लोकतांत्रिक सक्रियता को पनपने की पूरी छूट दी यह उनकी विशेषता है। आरोप और विशेषता के बीच इस आधार पर तुलना होगी कि उनके मुकाबले में कौन है और उसकी विचार धारा क्या है? टीम अन्ना ने जिस तरह प्रधानमंत्री का भ्रष्टाचार प्रमाणित करने की पहल की वह मेरे विचार में यदि सच भी हो तब भी अनावश्यक थी, औचित्य हीन थी, टीम पर संदेह पैदा करने वाली थी कि टीम व्यवस्था परिवर्तन की लाइन से हटकर सत्ता संघर्ष की लाइन पर बढ़ रही है। वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था के जारी रहते यदि मनमोहन सिंह जी की जगह अरविन्द केजरीवाल भी प्रधानमंत्री बन जाये तो कोई सुधार संभव नहीं जब तक पावर का विकेन्द्रीयकरण न हो।

मैं अब तक नहीं समझ पा रहा कि टीम अन्ना भ्रष्टाचार नियंत्रण की जगह पर संसद के अधिकारों के विभाजन को मुद्दा बनाने से क्यों कतरा रही है। यदि लोक संसद बनाकर वर्तमान संसद के तानाशाही अधिकारों में विभाजन का आंदोलन हो तो सबसे ज्यादा सुरक्षित और लोकप्रिय मुद्दा हो सकता है। यह मुद्दा न उठाने के पीछे यह संदेह है कि इससे तो भविष्य में बनने वाली संसद के अधिकार ही घट जायेंगे। अर्थात् यदि रामदेव जी या टीम अन्ना भ्रष्टाचार या मंहगाई आदि के आधार पर चुनाव जीत लेते हैं तो लोक संसद तो इनके लिये भी घातक हो सकतो है। ऐसा संदेह स्वाभाविक है। यही संदेह मुझे टीम अन्ना के साथ सहभागिता से रोक रहा है। टीम अन्ना न कहीं संविधान संशोधन का मुद्दा उठा रही है न सहभागी लोकतंत्र का। संसदीय ढांचे पर भी प्रश्न उठाने के बाद उनकी लाइन अब फिर से बदलकर भ्रष्टाचार की तरफ मुड़ गई है। यदि ऐसा ही हुआ तो मेरे विचार में नीतिश कुमार या मनमोहन सिंह की लाइन ज्यादा विश्वास योग्य ह क्योंकि दोनों में कहीं तानाशाही की गंध नहीं है।

यह सही है कि अन्ना हजारे स्वयं पूरी तरह सहभागी लोकतंत्र को सर्वोच्च प्राथमिकता समझते हैं। टीम के सदस्य अरविन्द केजरीवाल, प्रशान्तभूषण, मनीष सिसोदिया, गोपाल राय आदि भी इस लाइन का महत्व समझते ह भले ही वे किसी राजनीति के अन्तर्गत स्पष्ट बोलने में हिचक रहे हों। मेरी तो उन्हें सलाह है कि वे खुलकर अपनी लाइन बदलें और संविधान संशोधन, लोक स्वराज्य, सहभागी लोकतंत्र, लोक संसद जैसे शब्दों को आधार बनाये तो जनता आसानी से समझ सकेगी।

ए टू जेड न्युज चैनल मे मई, जुन माह मे प्रसारित कार्यक्रम।

(1) धर्म और सम्प्रदाय

किसी अन्य के हित में किये जाने वाले निःस्वार्थ कार्य को धर्म कहते है

धर्म के नाम पर संगठित समूह को सम्प्रदाय कहते है ।

धर्म

1. न्याय प्रधान होता है
2. कर्तब्य प्रधान होता है
3. देश काल परिस्थिति अनुसार मौलिक संशोधन संभव हैं।
4. न कोई व्यक्ति प्रारंभ करता है न ही कोई व्यक्ति या पुस्तक स्वतः
5. गुण प्रधान क्रियाओ से पहचान बनती है, संख्या बल का कोई महत्व नही होता।
6. अनुशासन आवश्यक नहीं है
7. विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होती है
8. विचार धारा व्यापक होती है
9 समाज को सर्वोच्च मानता है
10 किसी विशेष पूजा पद्धति से जुडा होना आवश्यक नहीं
11 आस्था पर विज्ञान भारी होता है

सम्प्रदाय

1. अपनत्व प्रधान होता है
2. अधिकार प्रधान होता है।
3. मौलिक संशोधन प्रतिबंधित है।
4. किसी व्यक्ति द्वारा प्रारंभ होकर उस व्यक्ति के प्रमाण होती है विचारों की पुस्तक को स्वतः प्रमाण माना जाता है
5 पहचान प्रधान क्रियाओ से गुणो का आभास होता है । संख्या बल की छीना झपटी होती है।
6 अनुशासन अनिवार्य है।
7 विचारो की स्वतंत्रता संभव नही
8 विचार धारा संकीर्ण होती है।
9 संगठन को सर्वोच्च मानता है
10. किसी विशेष पूजा पद्धति से जुडना आवश्यक है।
11 विज्ञान पर आस्था भारी होती है।

धर्म के नाम पर वर्तमान मे स्थापित संगठन प्रारंभ मे सम्प्रदाय ही रहते है। यदि ऐसे संगठन लम्बे समय तक जीवित रहकर विस्तार करते रहे तो कालान्तर मे वे धर्म कहे जाने लगते है। इस्लाम और इसाइयत इसी प्रक्रिया से धर्म बने जबकि धर्म कहे जाने के कोई भी गुण उनमे मौजूद नही। सिख, जैन और बौद्ध संगठन वर्तमान मे धर्म और सम्प्रदाय के बीच की प्रक्रिया मे है । हिन्दू एकमात्र ऐसी विचार धारा है जो धर्म के सभी लक्षणो का पूरा करती है। हिन्दुओ का कोई संगठन आज तक न बना है न बनेगा। कुछ हिन्दुओ ने मिलकर ऐसे संगठन बनाये भी तो वे सम्प्रदाय तक भी नही पहुंच पाये क्योकि सम्प्रदाय बनने के लिये भी तो कई सौ वर्षो तक की लगातार प्रगति चाहिये।

सम्प्रदाय यदि संख्या विस्तार की छीना झपटी न करे तो सम्प्रदाय कोई बडी समस्या नही किन्तु आम तौर पर सम्प्रदाय सख्या विस्तार के लिये हिंसा, छल, कपट, लोभ तथा लालच का सहारा लेते ही है। इस्लाम पूरे विश्व मे साम्प्रदायिकता विस्तार के लिये सबसे उपर माना जाता ह । उसके बाद ईसाइयत तथा संघ परिवार का नम्बर है।

(2) फासी की सजा का विकल्प

कोई भी दण्ड कभी मानवीय नही होता। समाज मे देश काल परिस्थति अनुसार अपराधियों मे भय की जरूरत घटती बढती रहती है और उसी जरूरत के अनुसार दण्ड की मात्रा और प्रकार के साथ मानवता का तालमेल होता है। यदि अपराधियों मे भय घटता है तो दण्ड की मात्रा भी बढती है और तरीका भी अधिक अमानवीय करना पडता है।

दण्ड अधिक से अधिक मानवीय हो इसकी मांग स्वतंत्रता के तत्काल बाद ही शुरू हो गई थी। अपराधी विचारो के लोगो की तो यह मांग रही ही है, साथ मे अराजकतावादी समूहों का भी उन्हे समर्थन मिला। व्यवस्था करने वाले भी अनुभव हीन थे। उन्हे संघर्ष का तो अच्छा अनुभव था किन्तु शासन का अनुभव नही था। परिणाम हुआ कि भय और मानवता का संतुलन अपराधियों और अराजक तत्वो के पक्ष मे झुकता चला गया। साठ वर्षो के बाद यदि आज का आकलन करे तो अपराधियो मे भय बिल्कुल घट गया है, अराजकता का वातावरण है समाज मे हिंसा के प्रति विश्वास बढ रहा है। अराजकता क वातावरण मे भी कुछ नासमझ या अराजकता वादी तत्व दण्ड को और अधिक मानवतावादी बनाने की बेतुकी मांग करते ही रहते है । जिस देश मे फांसी की सजा होते हुए भी अपराधियो मे भय घट रहा है उस देश मे भी फांसी की सजा हटाने की मांग ऐसे लोगो की नीयत पर संदेह पैदा करती है। भारत के वर्तमान वातावरण मे दण्ड का तरीका और ज्यादा अमानवीय बनाने की जरूरत है और यदि जरूरत पडे तो खुलेआम चौक पर फांसी की प्रथा को भी अल्प काल के लिये जीवित किया जा सकता है। मैने तो पुराने जमाने मे सुना है कि कभी कभी ऐसे अपराधी का सिर काटकर उसे समाज मे घुमाने तक की प्रथा रही है । यद्यपि आज ऐसी प्रथा की आवश्यकता नही है किन्तु यदि इसी तरह अराजकता बढती रही तो वैसी स्थिति से भो इन्कार संभव नही।

फांसी की सजा देना समाज का कभी उद्देश्य नही है। उद्देश्य है अपराधियो मे भय पैदा करना। यदि न्यायालय द्वारा फांसी की सजा घोषित अपराधी को उसके निवेदन पर दोनो आंख निकालकर अंधा बनकर जीवित रहने की छूट जमानत पर देने का भी अधिकार न्यायालय को दे दिया जाय तो फांसी की जरूरत भी घट जायगी तथा समाज मे भय भी बना रहेगा। मेरे विचार मे फांसी की सजा का यह एक अच्छा विकल्प हो सकता है । क्योकि चौक पर फांसी देना या सिर काटकर घुमाना मजबूरी मे अन्तिम विकल्प है आदर्श स्थिति नही। अन्धा बनाकर उसे जमानत पर छोड देना एक नया प्रयोग हो सकता है । इस प्रयोग पर समाज मे बहस छिडनी चाहिये।

3 दहेज प्रथा

प्राचीन समय मे समाज मे महिलाओं को विशेष सुरक्षा प्राप्त थी। युद्ध या आपसी विवादो मे भी महिलाओं की भूमिका नगण्य थी। परिणाम स्वरूप महिला जनसंख्या अनुपात मे महिलाओं की संख्या हमेशा ही ज्यादा होती थी।

प्राचीन समय मे परिवारो मे सम्पत्ति का बटवारा भी नही होता था । परिवार की सम्पत्ति परिवार मे रहती थी । एक लडकी और एक लडका मिलकर परिवार के अन्दर रहकर भी नया परिवार बनाते थे तब लडकी का पिता अपनी क्षमता अनुसार लडकी का हिस्सा समझकर उस नये परिवार को जो कुछ देता था वह दहेज था। वह दहेज लडके का माना जाता था। इसी तरह लडके का पिता विवाह के समय लडके का हिस्सा समझकर जो गहने देता था वह लडकी के अधिकार मे होता था। ये लडके लडकी की अलग अलग व्यक्तिगत सम्पत्ति माने जाते थे, पारिवारिक नही।

अंग्रेजो ने इस सामाजिक व्यवस्था के साथ छेड छाड करके सम्पत्ति मे लडके का कानूनी हिस्सा कायम कर दिया और स्वतंत्रता के बाद वैसी ही छेडछाड करके लडकियों को भी वैसा ही कानूनी अधिकार दे दिया गया। सामाजिक व्यवस्था अब भी लगभग पुरानी ही है और नई व्यवस्था बिल्कुल भिन्न हो गई है।

दहेज न कभी कोई समस्या थी न है। यदि समाज मे महिलाएं अधिक होगी तो दहेज का बढना स्वाभाविक है । यदि नासमझ राजनेता एक से अधिक महिलाओं के साथ विवाह का कोई कोड बिल बनाकर रोक देंगे तो दहेज बढेगा ही। स्वतंत्रता के बाद ज्योही सरकार ने सामाजिक व्यवस्था मे हस्तक्षेप बढाया त्योही कानून व्यवस्था की समस्या पैदा हुई । स्वतंत्रता के बाद विभिन्न कारणो से महिलाओं की संख्या घटने लगी। धीरे धीरे दहेज खतम हुआ। आज तो हालत यह है कि लडके का पिता कई जगह दहेज देने लगा है । लडकियां आयात होने लगी है। कई आपराधिक महिलाए तो नकली विवाह रचकर सारा जेवर ले लेती है और पहले ही दिन सब लेकर फरार हो जाती है। गांवो मे लडके कुवारे रह रहे है। गरीब घरो के लडके परेशान है । जाति बंधन टूटने लगे है। फिर भी हमारे नासमझ नेताओ को दहेज एक समस्या के रूप मे आज भी दिखाई दे रही है।

दहेज की व्यवस्था को तोडना अव्यवस्था को जन्म देगा। एक अन्ध लडके का विवाह लडकी के पिता को भारी रकम देकर करे या अन्धी लडकी का विवाह अच्छे लडके के पिता को भारी धन देकर करे इसमे गलत क्या हैं? यदि समाज भी एक नियम बनाकर दहेज पूरी तरह रोक दे तो गरीब घरो की लडकियां बडे घरो मे जा सकती है किन्तु बडे घरो की लडकियां का क्या होगा? मेरे विचार मे दहेज कोई समस्या नही है। यदि इसी तरह लडकियों की संख्या घटती रही तो दहेज बिल्कुल ही उल्टा हो जायगा।" । हमारे नेताओ को चिन्ता सताने लगी है । वे पूरी ताकत लगा रहे है कि महिलाओ की संख्या घटे नही । यदि महिलाओ की संख्या कुछ बढी तो नेताओ की दहेज नामक दुकानदारी आराम से चलती रहेगी।

4 आतंकवाद नियंत्रण का केन्द्रीय कानून

सुरक्षा और न्याय समाज का दायित्व होता है। अन्य सब प्रकार के विकास कार्य समाज के स्वैच्छिक कर्तब्य होते है, दायित्व नही। सुरक्षा और न्याय प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार होता है जबकि अन्य विकास कार्य नागरिक के अधिकार तक ही सीमित होते है। व्यक्ति विश्व समाज का अंग होता है और नागरिक राष्ट्रीय समाज तक सीमित है।

प्रत्येक व्यक्ति को सुरक्षा देना प्रत्येक इकाई का दायित्व होता है। प्रत्येक नीचे की इकाई उपर की इकाई से जुडी होती है और इस तरह जुडते जुडते व्यवस्था विश्व इकाई तक चली जाती है। सुरक्षा और न्याय की व्यवस्था हर उपर वाली इकाई का स्वाभाविक अधिकार होता है जबकि अन्य विकास कार्य उसके स्वाभाविक अधिकार न होकर नीचे की इकाई की सहमति पर निर्भर करते है । विश्व समाज का कोई वैधानिक स्वरूप न होने से अभी यह इकाई राष्ट्र तक ही स्थापित है। किन्तु धीरे धीरे राष्ट्र संघ मानवाधिकार आदि के नाम पर सुरक्षा और न्याय क्रमशः राष्ट्र की सीमाओ से भै आगे सरकने लगे है जो एक शुभ संकेत है इराक लीबिया आदि देशो मे राष्ट्र सर्वोच्च जैसे विचार को कमजोर करने मे विश्व के कुछ देशो का हस्तक्षेप इस दिशा मे अच्छा कदम है।

भारत मे अभी एक उल्टी हवा चल पडी है जिसके अनुसार प्रदेश सरकारे सुरक्षा और न्याय के मामले मे केन्द्रीय हस्तक्षेप के खिलाफ एक जुट हो रही है। मनुष्य की सुरक्षा का अन्तिम अधिकार न परिवार तक सीमित है न राज्य तक । वह तो वर्तमान समय मे राष्ट्र का है जिसमे सबकी सहभागिता है। यदि संविधान बनाने वालो ने न समझने के कारण भूल कर दी तो भूल सुधारने की जरूरत है न कि बिगाडने की। शिक्षा स्वास्थ आवागमन आदि हजारो विषय मुख्य रूप से नीचे की इकाइयो के है। इन्हे केन्द्र सरकार दबोच कर बैठी है और राज्य सरकारे चुप है। दूसरी ओर

केन्द्र सरकार सुरक्षा के मामलो मे पहल करती है तो राज्य सरकारे केन्द्र से सवाल जबाब शुरू कर देती है। पूरे भारत मे नक्सलवाद बढ रहा है। अराजकता के वातावरण की आड लेकर केन्द्र से टकरान मे इन्हे बहुत मजा आ रहा है। नवीन पटनायक की तो पोल खुल गई । ममता का कोई सोच है ही नही । रमण सिंह और नीतिश कुमार को विचार कर कुछ बोलना चाहिये।

वैसे यदि राज्य सरकारें इस तरह नासमझी करने पर ही उतारू है तो केन्द्र सरकार राज्यो के बीच से एक संचालन समिति बनाकर यदि उन्हे ही संचालन का दायित्व दे दे तब भी कुछ बिगडने वाला नही। केन्द्र राज्य टकराव के कारण किसी अच्छी योजना मे बाधा अच्छी बात नही।

पत्रोत्तर

अब्दुल जब्बार, 48 कुंभ नगर बाजार चित्तौडगढ राजस्थान

देश के एक दार्शनिक ने अपने संस्मरण मे कहा मुझे अपनी छोटी सी जिन्दगी मे सदियो का सफर तय करना है। इसलिये मैने जिन्दगी के हर पल को जी भरके जीया, सारा जीवन कल्याणकारी काम मे लगा दिया। अच्छाई नजदीक होने से बुराईयां पास नही आ सकी । बुरी बात कहने सुनने का समय ही नहो मिला। हम उनके आदर्शो पर चलके दूसरे का भला कर सके, तो अच्छा नही तो अपना भला तो कर ही सकते है। इसमे इस किताब का ये शेर आपके साथ रहेगा।

''जब जिन्दगी ही कम है, मोहब्बत के वास्ते''

''लाउॅ कहॉ से वक्त मै नफरत के वास्ते''

''अहिंसा के उजाले '' ने जीवन के हर पहलू को प्रकाशित एंव प्रभावित किया है। इस पुस्तक की रचनाए सामयिक, उद्देश्यपूर्ण होकर समस्या समाधान की राह पर एक आदर्श प्रस्तुत करेगी। अहिंसा के उजाले आपके हाथो तक पहुचाने मे देश के मुर्धन्य साहित्यकारों ने बडा प्रयास किया है। आपको यह काब्य कलश कैसा लगा। ये सामुहिक प्रयास समाज और देश हित मे और ज्यादा कारगर कैसे साबित हो सकते हैं। इस हेतु आपके अनमोल सुझाव हमे प्रेरणा एंव मार्ग दर्शन प्रदान करेंगे।

उत्तर– आपकी पुस्तक अहिंसा के उजाले मिली। मै साहित्य ठीक से समझ नही पाता। इसलिये मैने यह पुस्तक साहित्यकार टीम को दे दी है। वे पढकर उपयोग करेंगे।

अहिंसा के उजाले शीषर्क ही पुस्तक का आधा भावार्थ प्रकट कर देता है। आज अहिंसा पर से विश्वास लगातार घट रहा है। अहिंसा या तो कायरता मे बदल रही है या हिंसा मे। अच्छे अच्छे अहिंसा के पुजारी गांधीवादी भी या तो नक्सलवाद का समर्थन करने लगे है अथवा आतंकवाद का । आपकी पुस्तक निश्चित रूप से अहिंसा को मजबूत करेगी। सितम्बर मे आप रामानुजगंज आइये तब बैठकर विस्तृत चर्चा होगी।

कार्यालयीन प्रश्नो के उत्तर–ज्ञान तत्व 247 के संदर्भ मे

प्रश्न– आपने गांधी मार्क्स और अम्बेडकर की तुलना करते समय लिखा कि गांधी के बाद गांधी के वारिसों की लाइन गांधी के विपरीत हो गई। आपका कथन सच तो है किन्तु यह स्पष्ट नही हुआ कि यह लाइन परिवर्तन स्वार्थ वश हुआ, भूलवश हुआ या देश काल परिस्थिति अनुसार?

उत्तर– गांधी के मरने के बाद भारत की सम्पूर्ण व्यवस्था के वारिस के रूप मे दो समूह थे (1) गांधीवादी सामाजिक कार्यकर्ता (2) गांधीवादी राजनैतिक कार्यकर्ता। सामाजिक कार्यकर्ता विनोबा जी के नेतृत्व मे समाज सुधार के कार्य मे लग गये। उन्होने बडी इमानदारी से त्याग तपस्या करके अपना काम किया। राजनैतिक दिशा देने वालों म पण्डित नेहरू पटेल और अम्बेडकर जी प्रमुख थे । इन तीनो की राजनैतिक दिशा गांधी के जीवित रहते ही उनसे मेल नही खाती थी तो उनके बाद तो उनकी लाइन पर बढने का कोई प्रश्न ही नही उठता था। गांधी जी गरीब ग्रामीणा श्रमजीवी किसान की उन्नति को प्राथमिकता देते थे। ये तीनो औद्योगिक उन्नति को प्राथमिकता देते थे। गांधी जी हिन्दुत्व की विचार धारा को श्रेष्ठ मानते थे। इन तीनो की दिशा आपस मे भी भिन्न थी और गांधी से भी। गांधी जी हिन्दुत्व के प्रति गुणात्मक श्रद्धा रखते थे । नेहरू जी के मन मे ऐसा कछ नही था, पटेल के मन मे संगठनात्मक हिन्दुत्व पर विश्वास था और अम्बेडकर के मन मे हिन्दुत्व के प्रति आक्रोश भाव था। गांधी हत्या के बाद उचित होता कि साम्प्रदायिक हिन्दुत्व को कडाई सें कुचल दिया जाता किन्तु पटेल जी का रूख नरम था जिस कारण नेहरू जी ने साम्प्रदायिक हिन्दुत्व को कुचलने का मार्ग न अपनाकर साम्प्रदायिक इस्लाम को बढावा दिया। नेहरू और पटेल अम्बेडकर से सतर्क थे किन्तु गांधी जी अम्बेडकर का दिल जीतना चाहते थे जो उनके जाने के बाद सभव नही था। अम्बेडकर जी हरिजन आदिवासी को हिन्दू धर्म से अलग एक समूह के रूप मे देखना चाहते थ किन्तु गांधी ने अपनी जान की बाजी लगाकर उन्हे ऐसा न करने के लिये विवश किया। गांधी के मरने के बाद अम्बेडकर इस दिशा मे आंशिक ही सफल हुए । आदिवासी धर्म बदलने के बाद भी आदिवासी ही रहेंगा अथवा लगातार आदिवासियो मे यह धारणा फैलाने का प्रयास हुआ कि आदिवासी भारत का मूल निवासी है और अन्य आयातित । गांधी जी गांव से प्रारंभ करके विश्व तक जुडना चाहते थे। नेहरू जी विश्व से प्रारंभ करके गांव तक जाना चाहते थे। पटेल गांव और विश्व की चिन्ता छोडकर राष्ट्र को ज्यादा महत्व देते थे। गांधी जी ने समाज की चिन्ता मे अपना परिवार बर्बाद कर दिया। नेहरू जी समाज के साथ साथ परिवार की भी पूरी चिन्ता करते थे। अम्बेडकर जी अपनी व्यक्तिगत चिन्ता ज्यादा करते थे। पटेल जी के विषय मे कुछ स्पष्ट नही। इस तरह हम कह सकते है कि स्वतंत्रता के कुछ पूर्व से ही गांधी श्रद्धा की वस्तु माने जाने लगे थे और भविष्य मे टकराव अवश्यसभावो था। अच्छा हुआ कि जो वे चले गये तो तीनो महापुरूष गांधी की अवहेलना से उत्पन्न वैचारिक युद्ध से बच गये।

2. प्रश्न–आपने गांधी को कट्टर हिन्दू लिखा जबकि गांधी जीवन भर हिन्दुत्व से सुधार वादी या संशोधन वादी रहे। ऐसे गांधी को कट्टर हिन्दू कैसे कह सकते है?

उत्तर– कट्टर हिन्दुत्व हमेशा ही समन्यवादी होता है। वह देश काल परिस्थिति अनुसार नीति मे समन्वय करने की स्वतंत्रता रखता है। कट्टर हिन्दुत्व अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा करना भी जानता है और दूसरे की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सम्मान करना भी। आज जो धार्मिक कट्टरता को परिभाषा प्रचलित है वह वास्तविक परिभाषा के ठीक विपरीत है। इसलिय आपके मन मे यह भ्रम पैदा हुआ । वर्तमान समय मे कट्टरता की जो परिभाषा प्रचलित है उसके अनुसार कट्टर व्यक्ति अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिये तो सामान्य स ज्यादा सतर्क रहता है किन्तु दूसरे लोगो के धार्मिक अधिकारों की जरा भी परवाह नही करता। कट्टरता की ऐसी परिभाषा हिन्दुत्व के पूरी तरह खिलाफ है। इसलिये ही मैने गांधी को कट्टर हिन्दू लिखा।

3. प्रश्न आपने लिखा है कि किसी व्यक्ति के सामाजिक अधिकारो की व्यवस्था समाज का दायित्व न होकर मात्र कर्तब्य है। सामाजिक अधिकार स्वैच्छिक होते है। आपके अनुसार कोई दलित अपने सामाजिक अधिकारो की मांग नही कर सकता क्योकि वह उसका मूल अधिकार नही है।

उत्तर– दलित शब्द उस समय जीवित था जब स्वतंत्रता के पूर्व प्रत्येक व्यक्ति को समान स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार प्राप्त नही थे। स्वतंत्रता के बाद प्रत्येक व्यक्ति को अवसर की समान स्वतंत्रता प्राप्त है। उसमे कोई व्यक्ति स्वयं को दलित कहने लगे यह उसका स्वार्थ है समाज का दोष नही। समाज मे प्रत्येक व्यक्ति कुछ लोगो से आगे होते है और कुछ से पीछे । ऐसा व्यक्ति खोजकर निकालना संभव नही जो किसी से किसी मामले मे पीछे न हो और न ही ऐसा व्यक्ति निकालना संभव है जो किसी से भी आगे न हो । समाज मे पीछे होने वालों की सहायता करना आगे वालो का कर्तब्य है किन्तु पीछे वाला ऐसी सहायता का दावा नही कर सकता क्योकि वह सहायता पीछे वाले का अधिकार नही है। स्वतंत्रता के पूर्व जा दलित पिछडे थे उन्हे अपराध पूर्वक आगे बढने से रोका गया। अब वह स्थिति नही है और यदि कहीं बल पूर्वक किसी की स्वतंत्रता मे बाधा पहुचाई जाती है तो राज्य का दायित्व है कि वह बल पूर्वक ऐसी बाधा को दूर करे । किन्तु किसी को दलित कहकर उसे अपनी स्वतंत्रता से अधिक का दावा करने हेतु उकसाना भी असामाजिक कार्य माना जाना चाहिये। कोई भी व्यक्ति चाहे वह श्रमिक पिछडा दलित आदिवासी महिला बीमार या अन्य किसी भी रूप मे पिछडा हो वह सहायता का निवेदन मात्र कर सकता है अधिकारिक रूप से दावा नही कर सकता ।

4 प्रश्न– आप कैसे कह सकते है कि ब्रहमदेव शर्मा की एक भूल ने बस्तर क्षेत्र के विकास को रोक दिया?

उत्तर– यह प्राकृतिक नियम है कि यदि किसी व्यक्ति को सब प्रकार की सुविधाए देकर भी अकेला रख दिया जावे तो उसका विकाश रूकेगा ही । शोषण रोकन के नाम पर किसी समूह को शेष विकसित समूह से अलग थलग करना गलत सिद्धान्त है। ब्रहमदेव शर्मा ने बस्तर मे वह भूल की। उन्होने हमारे रामानुजगंज क्षेत्र मे भी वह प्रयोग दुहराना चाहा किन्तु यहॉ के आदिवासियो ने ही उनको नकार दिया। आज भी वे इस क्षेत्र मे यदा कदा अपनी डफली अपना राग सुनात रहते है किन्तु कोई सुनता नही। उस काल खंड मे तो शर्मा जी अपने शिष्य मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह जी की ताकत पर ज्यादा उछल कूद करते थे। अब जब शिष्य की अकल ही ठिकाने लगी हुई है तो गुरू तो बेचारे संकट मे होगे ही।

उत्तरार्ध

किसकी बंधक ह जीवन की मूल स्वतंत्रता – नरेन्द्र सिंह जी बनबोई उत्तर प्रदेश

मित्रों! सामान्यतः देखा जाता है कि समाज अधिकतर व्यवस्था से असंतुष्ट ही रहता है। भले ही वह व्यवस्था के नियंत्रण में रहे लेकिन वह उससे मुक्ति पाना चाहता है। दुनिया भर में समाज में बहुतायत पर लोकतंत्र की स्थापना के बाद भी व्यक्ति मात्र की यह धारणा है कि वह स्वशासन से दूर है कहीं न कहीं उसकी स्वतंत्रता किसी की बंधक है। इस विषय पर हमें चिंतन करना होगा।

सदैव से ही, जब से व्यक्ति ने व्यवस्था शब्द के प्रभाव को स्वीकार किया है और व्यवस्था की स्थापना के लिए राजनीति को माध्यम बनाया है। तभी से समाज तथा राजनीति के बीच समाज के अधिकारों की सीमा तय करने का द्वन्द चलता रहा है। राजनीति स्वयं को समाज में व्यवस्था की स्थापना का न मानकर उसकी स्थापना का कारक मानती रही है। मेरे विचार से समाज में अधिकारों के माध्यम सीमांकन का यह स्वरूप ठीक नही ह। लेकिन प्रश्न उठता है कि यदि समाज में व्यवस्था की स्थापना हेतु राजनीति का स्वरूप स्वतंत्र नही होगा तो व्यवस्था की स्थापना किस प्रकार हो सकेगी?

वास्तव में समाज को राजनीति के इसी स्वभाव पर विचार मंथन करना होगा। क्योंकि समाज में, राजनीति के माध्यम से हम जो व्यवस्था करते आये हैं उसमें राजनीति का स्वभाव आत्म निष्ठ रहा है, जबकि वह वस्तुनिष्ठ होना चाहिये। राजनीति ने अपने स्वभाव को कभी वस्तुनिष्ठ प्रदर्शित नहीं किया। इसका यह आत्मनिष्ठ स्वभाव ही युगो से जीवन की मूल स्वतंत्रता को रौंद रहा है और आने वाले समय में भी इसका यह स्वभाव समाज में संतुलित व्यवस्था की स्थापना का कारण नही बन सकेगा। इसके लिए तो हमें सत्य को अन्वेषित करना होगा।

मेरे विचार में व्यवस्था शब्द के चरित्र का अभिव्यक्त सार यह है कि समाज इसे अपने परिवेश में इसलिए स्थापित करता है कि उसके जीवन चक्र में सुगमता बनी रहे। वह प्रबंधित रहे। राजनीति को अपने प्रबंध के अधिकार सौपने के पीछे समाज की केवल यही मंशा रही है। लेकिन अधिकार प्राप्त कर लेने के बाद राजनीतिक व्यवस्था ने समाज की इस आकांक्षा का सदैव ही दलन किया है। क्योंकि राजनीति कभी भी अपने इस उच्च श्रृंखल स्वभाव को नही नकार पायी कि समाज की गुलामी में ही उसका अस्तित्व सुरक्षित है। राजनीति अपनी इसी महत्वाकांक्षा की खातिर समाज पर व्यवस्था के नाम से नियंत्रण करने के लिए विभिन्न प्रकार से प्रयास करती रहती है। आधुनिक समाज में राजनीति द्वारा स्थापित लोकतंत्र का लोक नियक्त स्वरूप भी समाज को इसी षड़यंत्र के तहत अपने नियंत्रण में रखने का प्रयास है। हमें जीवन की मूल स्वतंत्रता की रक्षा के लिए समाज की व्यवस्था मे राजनीति के इस षड़यंत्र से मुक्त करना होगा।

इस स्थिति में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि व्यवस्था का वह कैसा स्वरूप होगा जो समाज को युगो से चली आ रही राजनीतिक परतंत्रता से मुक्त कर देगा। ....मित्रों! वह व्यवस्था लोकतंत्र से इतर कुछ नहीं होगी। बस उसकी स्थापना के सैद्धांतिक ढांचे में इतना अंतर होगा कि वह व्यवस्था

लोक नियुक्त के स्थान पर लोक नियंत्रित होगी। ऐसा होने पर शक्ति का केन्द्रीयकरण नही हो सकेगा। और ना तब व्यवस्था तंत्र से जुड़न वाले लोग राजनीति की शक्ति का निजी स्वार्थो में प्रयोग कर पायगे। तब लोगो के मन में राजनीतिक विचार भाव कमजोर होगा और सामाजिक विचार भाव मजबूत होगा। .... इसी के साथ व्यवस्था के लोक नियंत्रित स्वरूप को और स्पष्ट करने के लिए व्यवस्था तथा नियंत्रण, इन दो शब्दों के व्यवहारिक स्वभाव पर भी पारदर्शी चिंतन होना चाहिए। राजनीति सदैव से ही समाज पर व्यवस्था के नाम से नियंत्रण का प्रयास करती रही है। मेरे विचार से व्यवस्था की स्थापना की यह प्रकिया गलत है। इन दोनों शब्दो के कियान्वयन का ठीक ढंग यह है कि राजनीति, समाज में व्यवस्था की स्थापना का माध्यम बने और समाज, राजनीति पर नियंत्रण रखे। समाज में राजनीति को इतनी स्वतंत्रता कभी नही मिलनी चाहिए कि वह निरंकुशता को अपना स्वाभाविक अधिकार मानने लगे।

इस स्थिति में अगला प्रश्न यह उठता है कि वर्तमान में स्थापित व्यवस्था के अनुसार राजनीति अपने निरंकुश स्वभाव को क्यो बदलना चाहगी? वह अपने मूल स्वभाव के विरूद्ध क्यों आचरण करेगी? वस्तु स्थिति जीवन की मूल स्वतंत्रता को संरक्षण देने वाली व्यवस्था की स्थापना के लिए एक जन क्रांति का आह्वान करती है। लेकिन वह क्रांति किसी संस्था, संगठन या व्यक्तियों के अल्प समूह द्वारा आहूत न हो। वह किसी नतृत्व की मोहताज न हो। बल्कि वह क्रांति जनसाधारण की वैचारिक चेतना का परिणाम हो। सम्पूर्ण जनमानस जिसका नायक हो। .... आदिकाल से आधुनिक काल तक समाज ने सत्ता के आक्रांताओं के विभिन्न रूप देखे हैं। दुनिया में राष्ट्र और राज्य की व्यवस्था के अन्तर्गत, कभी जीवन विदेशियों द्वारा स्थापित राजनीतिक व्यवस्था का गुलाम रहा है और कभी स्वदेशी तंत्र का। हमें राजनीतिक व्यवस्था के चरित्र में व्याप्त इसी दोष के उत्पन्न करने वाले सूत्र को समझना होगा। हमें यह तथ्य भी समझना होगा कि हम किसी अच्छी सरकार की स्थापना की कल्पना में कब तक गलाम रह सकते हैं। और क्यों कोई अच्छी या बुरी सरकार अपने स्वभाव के विरूद्ध समाज को चिर स्वतंत्रता प्रदान करेगी। क्योंकि मेरा यह मानना है कि कोई सबसे अच्छी सरकार भी स्वशासन का विकल्प नहीं हो सकती। इससे बेहतर तो यह है कि समाज अपनी वैचारिक चेतना जगाये और अपन अस्तित्व के अर्थ को समझे कि वह ही शक्ति का मूल स्त्रोत है। व्यवस्था का कारक है। इस विचार को समझते हुए हमें केवल स्वराज्य की स्थापना के लिए कृतसंकल्प होना होगा।

ऐसी अद्भुत और अनुपम क्रांति का वैचारिक ढांचा खडा करने का कार्य हमे मिल जुल कर करना है। हम अब अपनी विचार तरंगों के माध्यम से राजनीति को व्यवस्था का केन्द्र मानने वाले लोगों को यह चेतावनी दे देना चाहते हैं कि निकट भविष्य में व्यवस्था के उस अनुपम दर्शन की वह सार्वभौमिक व्याख्या होनी है जो जीवन को राजनीतिक गुलामी से मुक्त कर देगी। मुझे प्रतीत होता है कि बहुत जल्द समाज में इसका आरंभ होगा और ईश्वर की कृपा से यह कार्य भारत की पुण्य धरा से ही उत्पन्न होगा। क्योंकि यह आदि जगद् गुरू का ही दायित्व बनता है कि वह मानव जाति से सार्वभौमिक स्वतंत्रता के मार्ग पर चलने का न केवल आह्वान करे बल्कि उसका मार्ग भो प्रशस्त करे। मुझे आशा है कि भारत का गुणी जन–मानस अपने इस दायित्व को अवश्य पूरा करेगा।

समाज में यह कारण स्पष्ट है कि व्यक्ति की गुलामी का कारण व्यवस्था के स्वरूप का राजनीतिक केन्द्रीयकरण होना है समाज को यह तथ्य समझना होगा कि दृढ़ राज्य की कल्पना व्यक्ति मात्र के मन से समाज भाव को कमजोर करती है। क्योंकि ऐसे में राज्य स्वयं को ही समाज की स्वतंत्रता का रक्षक व उसे उसके अधिकार देने वाला सिद्ध करता है। हमें व्यक्ति मात्र के मन में समायी हुई इस गलत धारणा को निकालना होगा। इसकी पुष्टि के लिए विश्व के किसी भी कोने में हुई जनक्रांति का अध्ययन करेंगे तो पायेंगे कि समाज को स्वतंत्रता प्राप्त कराने के लिए हुई वे क्रांतिया कुछ लोगो के माध्यम से केवल राज्य की दृढ़ता बढ़ाने के उद्देश्य में सिमटकर रह गई है और एशिया महाद्वीप में तो प्रायः सभी प्रमुख देशों में ऐसी क्रांतिया हुई है। जिनका मूल उद्देश्य तो समाज को सार्वभौमिक स्वतंत्रता प्रदान कराना था। लेकिन वे केवल सत्ता परिवर्तन का सबसे बड़ा उदाहरण मानता हूँ। क्योंकि स्वतंत्रता मिलने के बाद यहॉ व्यवस्था परिवर्तन के नाम पर तंत्र के सर्वेसर्वाओं ने राजनीतिक व्यवस्था का समाज द्वारा नियुक्त होने वाला ऐसा ढांचा खडा किया कि समाज अपनी स्वतंत्रता के अस्तित्व की पहचान ही भूल गया। हमें स्वतंत्रता के विचार को समाज के सामने पुनः परिभाषित करना होगा। क्योंकि कोई राज्य या उसका संविधान, समाज के रूप में स्थापित व्यक्तियों के समूह के अधिकारों की सीमा तय नहीं कर सकता। स्वतंत्रता तो स्वतः स्फूर्त होने वाला विषय है। यह समाज में व्यक्तियों के बीच परस्पर आधार पर प्रयोग का विषय भी है। इसकी मर्यादा तय करने की आवश्यकता नहीं होती। यदि राज्य, समाज की स्वतंत्रता का स्तर कानून के माध्यम से तय करता है तो यह उसका व्यक्तियों को गुलाम बनाने का अपना ढंग है। मैं राज्य के इस ढंग को समाज की स्वतंत्रता का भक्षक ही कहूँगा।

हॉ! अपने विचार व्यक्त करते हुए मैं यहॉ पर यह बात अवश्य कहूँगा कि मेरा उद्देश्य, समाज द्वारा भारतीय राज्य के न्याय तथा सुरक्षा के दायित्व के विस्तार के क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का कतई नही है। राज्य अपने इन दायित्वों का निर्बाध निर्वहन करें। .... मित्रो! जीवन को स्वतंत्रता का मूल स्वरूप प्रदान करने की शुरूआत हम व्यवस्था के मौजूदा स्वरूप का विकेन्द्रीयकरण करके कर सकते हैं। जो कि शक्ति के अकेन्द्रीयकरण क लक्ष्य को प्राप्त करके पूरा होगा। अब प्रश्न उठता है कि विकेन्द्रीयकरण की शुरूआत किस प्रकार हो? इसका एक उपाय लोकसंसद के गठन के रूप में है जो कि निम्न प्रकार है–

1. वर्तमान लोक सभा के समकक्ष एक लोकसंसद हो। जिसकी सदस्य संख्या, चुनाव प्रणाली तथा समय सीमा वर्तमान लोकसभा के समान हो। चुनाव भी लोक सभा के साथ हो किन्तु चुनाव दलीय आधार पर न होकर निर्दलीय आधार पर हो।
2. लोक संसद के निम्न कार्य होंगे– क. लोक पाल समिति का चुनाव।
   ख. संसद द्वारा प्रस्तावित संविधान संशोधन पर निर्णय।

   ग. सांसद, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश, मंत्री एवं राष्ट्रपति के वेतन, भत्ते संबंधी प्रस्ताव पर विचार और निर्णय।

   घ. किसी सांसद के विरूद्ध उसके निर्वाचन क्षेत्र के अन्तर्गत सरपंचों के बहुमत से प्रस्तावित अविश्वास प्रस्ताव पर विचार और निर्णय।

   च. लोक पाल समिति के भ्रष्टाचार के विरूद्ध शिकायत का निर्णय।

   छ. व्यक्ति, परिवार, ग्राम सभा, जिला सभा, प्रदेश सरकार तथा केन्द्र सरकार के आपसी संबंधों पर विचार और निर्णय।

   ज. किन्ही संवैधानिक इकाइयों के बीच किसी प्रकार के आपसी टकराव के न निपटने की स्थिति में विचार और निर्णय।

3. लोक सांसद का कोई वेतन भत्ता नहीं होगा।

4. लोक संसद का कोई कार्यालय व स्टाफ नहीं होगा। लोकपाल समिति का कार्यालय व स्टाफ ही पर्याप्त होगा।

5. यदि किसी प्रस्ताव पर लोक संसद तथा लोक सभा के बीच अंतिम रूप से टकराव होता है तो उसका निर्णय जनमत संग्रह से होगा।

इस प्रस्ताव को पुनः प्रस्तुत करके मैं अपनी ओर से यहॉ पर यह तथ्य भी प्रस्तुत करूॅगा कि यह प्रस्ताव व्यवस्था के विकेन्द्रीयकरण की शरूआत करने की दिशा में प्रयास भर है। कोई अंतिम विकल्प नही है। इसके गुण दोष की व्याख्या करते हुए समाज को राजनीतिक गुलामी से मुक्त करने के लिए यदि किसी महानुभाव द्वारा अन्य कोई उपयुक्त विचार प्रस्तुत होता है तो हम उसे समाज तक पहुॅचाने का हर संभव प्रयास करेगे।

आइये! हम न केवल एक सी विचार धारा के लोग बल्कि विभिन्न विचार धाराओं को मानने वाले लोग भी साथ मिलकर समाज को उसकी स्वतंत्रता दिलाने के लिए जनसाधारण के मन में विचार क्रांति का सूत्रपात्र करें। हम समाज में विचार केन्द्रों का सृजन करें। सार्वभौमिक निष्कर्ष निकाले और भारत को उसके प्राचीन गौरव से जोडे।

प्रस्तुत विषय को मैं इस आशा के साथ समाप्त कर रहा हूॅ कि आप सब इस पुनीत कार्य में यथा योग्य सहयोग एवं सहभागिता करके ज्ञानक्रांति परिवार को कृतार्थ करेंगे।

धन्यवाद

आपका शुभेच्छू
नरेन्द्र सिंह
ग्रा0 पो0 – बनबोई
जनपद – बुलन्दशहर (उ0प्र0)
09012432074